प्रकाशक
श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०
प्रोप्राइटरः—छात्रहितकारी पुस्तकमाला,
दारागंज, प्रयाग।

मुद्रक
श्री रघुनाथप्रसाद वर्मा
नागरी प्रेस, दारागंज
प्रयाग

समर्थ गुरु रामदास

बालको ! तुम लोगों ने रामायण के लेखक गोस्वामी तुलसीदास जी का नाम सुना होगा। ये उत्तरी हिन्दुस्तान के एक बहुत बड़े सन्त तथा हिन्दी-साहित्य के सर्व श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। यह रामचन्द्र जी के सच्चे भक्त थे।

आज हम तुम लोगों को एक ऐसे ही दूसरे सन्त की जीवनी सुनना चाहते हैं। इनका नाम नारायण था किन्तु यह 'समर्थ रामदास' नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। तुम लोगों ने इनका नाम पहिले शायद न सुना होगा। लेकिन दक्षिणी हिन्दुस्तान का बच्चा बच्चा इनके नाम तथा कामों को अच्छी तरह जानता है। वहाँ के लोग इन्हें हनुमान जी का अवतार मानते हैं और देवता की तरह इनकी पूजा करते हैं।

अभी हाल ही में (अप्रैल १९३२ ई०) में आपके जन्म स्थान जाम्ब गाँव में आपका एक मन्दिर बनाया गया है और उसमें आपकी मूर्ति स्थापित की गई है।

आप बहुत बड़े विद्वान्, महात्मा, समय देख कर काम करने वाले तथा राजनीति की अच्छी जानकारी रखने वाले थे।

यह आपके ही उपदेश का फल था कि महाराष्ट्र केसरी शिवाजी ने भारतवर्ष को स्वतन्त्र करने का काम अपने हाथों में लिया और लगभग सारे दक्खिनी हिन्दुस्तान तथा उत्तरी हिन्दुस्तान के भी कुछ भागों को स्वतन्त्र कर वहाँ पर रामराज्य की स्थापना की। अपनी अल्पायु के कारण वे सारे भारतवर्ष को आज़ाद न कर सके।

कहते हैं कि बहुत से अच्छे २ गुण, जो शिवाजी में थे, वे उन्होंने श्री समर्थ रामदास जी से ही ग्रहण किये थे। स्वर्गीय जस्टिस रानडे तथा राजवाड़े जैसे इतिहास लेखकों का यह कथन है कि शिवाजी ने देशोद्धार का जो काम किया उसका बहुत कुछ श्रेय समर्थ रामदास जी को है।

जन्म और बचपन

हिन्दुस्तान के दक्षिण में हैद्राबाद नाम की एक प्राचीन रियासत है। इस रियासत के औरंगाबाद जिले में आंबड़ नाम का एक परगना है। इस परगने में जाम्ब नाम का एक बहुत पुराना गाँव है। यही श्री समर्थ स्वामी रामदास जी का जन्म स्थान है।

वैसे तो यह गाँव बहुत प्राचीन काल से था किन्तु बीच में कुछ दिनों तक उजड़ गया था। श्री समर्थ रामदास जी के वंशज पं० कृष्णा जी पंत ने इसे फिर बसाया और तब से फिर उन्हीं के वंश के लोग बराबर इस गाँव के मुखिया होते रहे। इन्हीं पं० कृष्णा जी पंत की इक्कीसवीं पीढ़ी में सन्त श्री समर्थ रामदास जी अवतरित हुए।

इनके पिता का नाम सूर्याजी पंत तथा माता का नाम राणूबाई था। ये दोनों ही सुशील, धर्मनिष्ठ एवं भगवत् भक्त थे। सूर्याजी पंत बचपन से ही भावुक, भक्त तथा विरक्त थे।

कहा जाता है कि इन्होंने अपने इष्ट देव भगवान् सूर्य देव की ३६ वर्ष तक उपासना तथा आरा-

धना की। उन्हीं के वरदान से इन्हें संवत् १६६२ (सन् १६०५ ई० में राणूबाई के गर्भ से पहला पुत्र हुआ जिसका नाम गंगाधर रक्खा गया। यही आगे चलकर रामी रामदास नामक प्रसिद्ध महात्मा हुए। इसके बाद संवत् १६६५ तदनुसार सन् १६०८ ई० में चैत्र सुद्ध ९ (रामनवमी के दिन ठीक मध्याह्न में दूसरा पुत्र हुआ। इसका नाम नारायण रखा गया और यही आगे चल कर जैसा कि पहले कहा गया है श्री समर्थ स्वामी रामदास नाम से विख्यात हुआ।

कहते हैं कि सूर्याजी पंत अपने द्वितीय बालक नारायण को उस समय के प्रसिद्ध महापुरुष एकनाथ जी महाराज के पास लेकर गये थे। उन्होंने कहा कि यह बालक हनुमान जी के अंश से उत्पन्न हुआ है और यह आशीर्वाद दिया कि यह एक बहुत बड़ा पुरुष होकर देश का कल्याण करे।

श्री समर्थ रामदास जी बचपन में बहुत चंचल एवं ऊधमी थे किन्तु साथ ही साथ तीव्र बुद्धि भी थे। इनका अधिकांश समय अपने सा-

थियों के साथ पेड़ों, छतों आदि पर चढ़ने तथा अन्य प्रकार के उद्यम करने में व्यतीत होता था। इस समय कोई इस बात की कल्पना भी न करता था कि यह ऊधमी चंचल बालक आगे चलकर एक गंभीर तत्व-दर्शी महात्मा के रूप में परिणत हो जायगा। इनका यज्ञोपवीत संस्कार पाँच वर्ष की अवस्था में हुआ। इसके पश्चात् इन्हें तथा इनके बड़े भाई के पढ़ाने के वास्ते एक अध्यापक रखे गये। लगभग इसी समय इनके पिता का परलोक वास हो गया और अब इन दोनों भाइयों के लालन-पालन तथा शिक्षा-दीक्षा का भार इनकी माता पर पड़ा। माता राणूबाई की सुशीलता तथा धार्मिकता ने इन दोनों भाइयों को साधु और महापुरुष बना दिया।

वर–प्राप्ति

कहते हैं कि जब रामदास जी सात वर्ष के हुए तब एक दिन उनके मन में यह विचार आया कि हनुमान जी ही उनके गुरू हों और उन्हें उनका कर्तव्य बतलायें। इस विचार के मन में उपस्थित होते ही उन्होंने हनुमान जी के मन्दिर में जाकर उनका ध्यान करने का एवं उनके प्रसन्न न होने तक

अन्न-जल ग्रहण न करने का निश्चय किया। इस निश्चय के अनुसार अपने गाँव के हनुमान जी के मंदिर में जाकर उनका ध्यान करने लगे। लगातार कई दिनों तक अन्न-जल ग्रहण किये बिना ही ध्यान करने के पश्चात् एक दिन हनुमान जी ने प्रसन्न हो उनको अपना दर्शन दिया तथा श्री रामचन्द्र जी का भी दर्शन कराया।

कहा जाता है कि इसी अवसर पर श्री रामचन्द्र जी ने उनसे कहा—'यवनों के आधीन होने के कारण यह भारत वर्ष बहुत कष्ट में है; समाज दिन दिन बिगड़ता जा रहा है अतः शीघ्र ही समाज का सुधार कर देश का उद्धार करो"। कहते हैं कि इसी समय श्री रामचन्द्र जी ने इनका नाम रामदास रक्खा।

गृह—त्याग

जब श्री समर्थ रामदास जी की अवस्था बारह वर्ष की हुई तब उनकी माता को उनके विवाह की चिन्ता हुई और उन्होंने एक अच्छा स्थल देखकर उसे ठीक भी कर दिया। जब यह

खबर रामदास जी के कानों तक पहुँची तो वे घर से बाहर चले गये और साइत के निकल जाने पर फिर घर वापस आये। उनका यह रङ्ग ढङ्ग देख-माता को बहुत दुःख हुआ।

एक दिन मौका देख कर एकान्त में उन्होंने पुत्र से व्याह करने का आग्रह किया और कहा कि जब तक अन्तर पट न पड़ जाय तब तक नाहीं मत करना। लाचार हो उन्हें माता की आज्ञा माननी पड़ी।

इसके उपरान्त उनके व्याह की तैयारी होने लगी और निश्चित तिथि पर बारात बड़ी सज-धज के साथ आसन नामक गाँव में पहुँची। वहाँ विवाह की सब रस्में बारी बारी से होने लगी। समर्थ जी ने उनमें किसी प्रकार की रुकावट न डाली। अन्त में अन्तर पट पकड़ने का अवसर आ पहुँचा और ब्राह्मणों ने उस देश की प्रथा के अनुसार "शुभ मंगल सावधान" यह मन्त्र पढ़ा। इस मंत्र का अर्थ रादास जी ने ब्राह्मणों से पूछा। उन्होंने कहा --इस मन्त्र का मतलब यह है कि अब तुम्हारे पैरों में गृहस्थी की बेड़ी पड़ रही है, सावधान हो

'जाओ'! रामदास जी ने सोचा कि मैं अपने भर-सक सावधान रहता ही हूं। इस पर भी ये लोग सावधान रहने के लिये कह रहे हैं तो अवश्य ही कुछ विशेष मतलब होगा। इसके साथ ही साथ यह सोच करके कि माँ का दिया हुआ वचन भी पूरा हो गया है; वे वहां से भाग निकले। लोगों ने उनका बहुतेरा पीछा किया मगर वे पकड़े न जा सके और निकल ही गये।

तपस्या

विवाह से भागने के पश्चात् चार-पाँच दिन तक रामदास जी अपने गाँव के आस पास ही कहीं छिपे रहे। तदुपरान्त वे नासिक की ओर चल पड़े और गोदावरी के तट पर पंचवटी में पहुचे। वहाँ पास ही टाकली नाम का एक गाँव था। उस गाँव में एक गुफा थी। उसी में वे रहने लगे।

वे नित्य प्रातःकाल शौचमुख मार्जन आदि से निवृत्त हो गोदावरी स्नान करने जाया करते थे। वहाँ स्नान के उपरान्त कमर भर पानी में खड़े होकर दोपहर तक जप किया करते थे। कभी कभी उन्हें मछलियां काटा करती थीं, पर उन्हें

उसकी कुछ खबर न होती। इसके पश्चात् भिक्षा मांग कर भोजन करते। लगातार बारह वर्ष तक इसी प्रकार पानी में खड़े रहने के कारण उनके शरीर के निचले हिस्से में कुछ खराबी आ गई किन्तु स्मरण तथा मानसिक शक्ति बढ़ गई और अन्त में उनका शरीर तेजस्वी हो गया।

तीर्थ-यात्रा

लगातार बारह साल तक इसी प्रकार कठिन तपस्या करने के बाद एक दिन श्री समर्थ जी के मन में देशाटन एवं तीर्थ-यात्रा करने का विचार आया। इसके दो उद्देश्य थे, एक पुण्यप्राप्ति और दूसरा भिन्न देशों तथा वहाँ के निवासियों का हाल मालूम करना।

ऊपर कहे मुताबिक श्री रामदास जी काशी प्रयाग, अयोध्या, मथुरा, वृन्दावन, द्वारका आदि तीर्थों में भ्रमण करते हुए श्रीनगर पहुँचे वहाँ कुछ समय तक विश्राम करने के अनन्तर वे बद्रीनाथ, केदारनाथ होकर मानसरोवर गये, यहाँ के अनेक विकट तथा मनोहर स्थानों को देख कर जगन्नाथ पुरी गये। वहाँ से सेतुबंध रामेश्वर

होते हुए लंका पधारे। यहाँ से लौटती बार दक्षिण के अनेक तीर्थों गोकर्ण, पम्पा, महाबलेश्वर, परशुराम आदि में होते हुए पंचवटी में अपने स्थान पर आ पहुँचे।

यात्रा करते समय जिन २ स्थानों में श्रीसमर्थ जी गये उन में से प्रायः हरएक स्थान पर उन्होंने श्री रामचन्द्र जी या हनुमान जी का मंदिर स्थापित किया और उसका प्रबन्ध किसी योग्य पुरुष के हाथ सौंप दिया। इस प्रकार उन्होंने सारे भारत वर्ष में लग भग सात सौ मठ या मन्दिर स्थापित किये।

वे जिन २ स्थानों में जाते थे, वहाँ के साधु संतों से मिल कर उनके सत्संग से स्वयं लाभ उठाते तथा अपने सत्संग से उन्हें लाभ पहुँचाते। तीर्थ यात्रा से पंचवटी में वापस आने पर उन्होंने वहाँ के राम मन्दिर के रामचन्द्र जी का दर्शन कर उन्हें अपनी तीर्थ यात्रा का सारा पुण्य समर्पण कर दिया। इससे यह प्रकट होता है कि वे निःस्पृह थे।

इस तीर्थ यात्रा से श्री रामदास जी को देश तथा धर्म को बुरी हालत का अच्छा ज्ञान हुआ। उन्होंने देखा कि दिन प्रति दिन उनका देश तथा धर्म अवनति की ओर तेजी से बढ़ रहा है। अगर इस समय इसके रोकने का कोई उपाय न किया जाय तो कुछ ही समय के बाद इसका उद्धार करना कठिन हो जायगा। अतः अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये परमात्मा के चिन्तन में लगे हुए लोगों को परोपकार में लगाना उन्होंने उचित समझा। इसलिये भगवान की ऐसी भक्ति का उपदेश देना शुरू किया जिससे लोग स्वार्थ की चिन्ता न कर के परोपकार में लग जाँय।

कहा जाता है कि तीर्थ-यात्रा से वापस आने के बाद रामदास जी एक दिन पैठन गाँव में महाराज एकनाथ जी को समाधि का दर्शन करने के लिये गये। वहाँ उन्हें यह खबर लगी कि उनके वियोग में उनकी माता रोते २ अन्धी होगई है और बहुत दुखी हैं। वहाँ से उनका गाँव पास ही था। अतः अपनी माँ एवं बड़े भाई से मिलने के लिये अपने गाँव में जाकर घर के दरवाजे पर 'जय जय श्री रघुवीर समर्थ' कह कर खड़े हो गये।

उनकी मां ने सोचा कि कोई साधु आये हैं, अतः अपनी पतोहू से उसे भिक्षा देने के वास्ते कहा। तदनुसार जब वह भिक्षा लेकर दरवाजे पर गई तो रामदास जी ने कहा कि यह कोई वैसा साधु नहीं है जो भिक्षा लेकर लौट जाय। अब की बार माँ ने उनकी बोली समझ ली और कहा "—नारायण तुम कितने बड़े हो गये हो? बड़े दुख की बात है कि आज मैं तुम्हें देख नहीं सकती"।

माता के वचन को सुन कर श्री समर्थ जी उनके पैरों पर पड़े और इसके बाद अपना हाथ उनके सर पर रखा जिससे उनकी आंखों में रोशनी आ गई। इस चमत्कार को देखकर माँ ने बेटे से कहा—पुत्र! मालूम होता है कि तुमने किसी भूत को सिद्ध कर लिया है।

श्री समर्थ जी ने उत्तर दिया—'माँ मैंने उसी भूत को वश किया है जिसकी कृपासे भालू तथा बन्दरों ने समुद्र पर पुल बांधा; जिसने चौदह वर्ष का वनवास स्वीकार कर कैकेयी की इच्छा पूर्ण की; जिसने अर्जुन को अपना विराट् रूप दिखलाया और जो सब भूतों के हृदय में वास करता है।

इस प्रकार माँ तथा पुत्र में बातचीत हो रही थी कि इसी बीच उनके बड़े भाई भी बाहर से आ गये। श्री समर्थ जी के प्रणाम करने पर उन्होंने रामदास जी को गले लगा लिया। इस मिलन के अवसर पर हर एक के हृदय में उत्पन्न भया हुआ आनन्द वर्णनातीत था। इसके पश्चात् समर्थ जी ने अपनी तीर्थ-यात्रा का सारा समाचार सब लोगों से कह सुनाया। तदुपरान्त घर के लोगों की इच्छा रखने के लिये वे कई दिनों तक घर पर रहे।

उनके विदेश जाने की खबर सुन कर माँ तथा अन्य कुटुम्बी लोग रोने लगे। श्री समर्थ जी ने उन लोगों को यह कह कर समझाया कि देश तथा धर्म की रक्षा के लिये घर रहने की अपेक्षा उनका बाहर रहना कहीं अच्छा है। उन्होंने माता से कहा कि परमात्मा चिन्तन से ही सच्ची शान्ति प्राप्त हो सकती है।

धर्मोपदेश

श्री रामदास जी ने पहले से ही इस बात का निश्चय कर लिया था कि वे घूम २ कर धर्मोपदेश तथा लोक-कल्याण का काम करेंगे। अतः इस बार

जब वे अपने गाँव से रवाना हुए तो पहले पंच-वटी और फिर टाकली गये। वहाँ से महाबलेश्वर क्षेत्र में गये। यहां पर चार महीने रहकर उन्होंने लोगों को कीर्तन द्वारा धर्मोपदेश दिया और अपने हाथ से रामचन्द्र जी के मूर्ति की स्थापना की।

महाबलेश्वर से चलकर वे कृष्णा और वेणा नदी के संगम पर माहुली तीर्थ में गये। यहाँ कई दिनों तक ठहर कर ईश्वर चिन्तन तथा धर्मोपदेश किया। कृष्णा नदी के तट पर अनेक मठों की स्थापना की तथा बहुत से साधुओं और पंडितों को अध्यात्म का रहस्य बतलाया।

मठों का प्रबन्ध करने के लिये अपने योग्य शिष्यों को नियुक्त कर वे दूसरों की भलाई करने के वास्ते आगे चले जाते थे। इस प्रकार उनके शिष्यों की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी और सारे महाराष्ट्र देश में उनकी कीर्ति-पताका फहराने लगी। यहाँ तक कि सारे भारतवर्ष से बड़े साधु और महापुरुष उनके दर्शन के लिये आने लगे।

कहा जाता है कि इसी बीच में जब वे वाई तीर्थ में थे, तब महात्माओं ने उनका सामर्थ्य देख

कर उन्हें 'समर्थ' पदवी से सुशोभित किया और तब से वे समर्थ नाम से प्रसिद्ध हुए।

शिवाजी को दीक्षा

यद्यपि समर्थ जी ने सारे भारतवर्ष में लगभग सात सौ मठ स्थापित किये थे किन्तु वे अधिकतर चाफल में ही रहते थे। हर एक मठ के व्यवस्थापक चारी २ से समर्थ जी के पास आकर अपने मठ की व्यवस्था का हाल सुनाया करते और भविष्य की व्यवस्था के विषय में सलाह लिया करते थे। समर्थ जी के समय में भारतवर्ष में जो अन्य साधु महात्मा थे वे भी समर्थ जी से आकर मिलते तथा उनके सत्संग से लाभ उठाते।

कहते हैं कि समर्थ जी के समय में एक दूसरे और प्रसिद्ध सन्त थे जिनका नाम तुकाराम था। उनकी भी कीर्ति समर्थ जी की तरह चारों ओर फैली हुई थी। महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी उनको अपना गुरु बनाना चाहते थे। इसी उद्देश्य से वे एक बार सन्त तुकाराम जी से मिलने को गये और उनसे दीक्षा देने के लिये अनुरोध किया। इस पर तुकाराम जी ने कहा कि इस समय जितने

साधु सन्त हैं उनमें रामदास जी की योग्यता मेरी समझ में सब से अधिक है अतः उन्हीं को आप अपना गुरु बनाइये। इससे यह सिद्ध होता है कि समर्थ जी उस समय के बहुत ऊँचे दर्जे के महात्मा थे।

शिवाजी ने और भी कई लोगों से श्री समर्थ जी की बड़ाई सुनी थी और अन्त में उन्होंने श्री समर्थ जी से दीक्षा लेने का विचार स्थिर किया। ये किसी एक स्थान पर दो तीन दिन से ज्यादा नहीं रहा करते थे, अतः उनका दर्शन होना बहुत ही दुर्लभ था। बहुत खोज करने पर अन्त में एक दिन जङ्गल में गूलर के पेड़ के नीचे शिवाजी को उनका दर्शन हुआ। उन्होंने वहीं पर मंत्रोपदेश देकर शिवाजी को अपना शिष्य बनाया।

श्री समर्थ के समान अनुभवी एवं योग्य गुरु को पाकर शिवाजी का बल दुगुना एवं साहस चौगुना हो गया और अब से वे देश को स्वतंत्र करने तथा धर्म की रक्षा का कार्य अधिक तत्परता से करने लगे। श्री समर्थ जी के शिष्यों, अनुयायियों एवं भिन्न २ स्थानों पर स्थापित मठों से शिवाजी को बहुत सहायता मिला करती थी।

श्री समर्थ जी कभी चाफल में रहते तो कभी ईश्वर का चिन्तन करने के लिये जङ्गलों तथा पहाड़ों पर चले जाते और कभी २ अपने शिष्यों के साथ देश-सेवा का काम करने के लिये इधर उधर घूमा करते थे। उनको यह पक्का विश्वास था कि धर्म की उपेक्षा और स्वाभिमान की कमी ही देश की अवनति के कारण हैं और अगर धर्म का प्रचार अधिक मात्रा में हो और देश में जागृति उत्पन्न कर दी जाय तो शीघ्र ही देश का सितारा चमक उठेगा। उन्होंने अपने जीवन भर इसी बात की चेष्टा की और शिवाजी से भी करायी। श्री समर्थ जी केवल विद्वान् ही नहीं थे किन्तु दूर-दर्शी एवं राजनीतिज्ञ भी थे। शिवाजी को थोड़े समय में जो इतनी सफलता प्राप्त हुई, यह श्री समर्थ जी ही के दूरदर्शिता एवं राजनीतिज्ञता का फल था।

एक समय की बात है कि श्री समर्थ जी अपने शिष्यगणों के साथ सतारा में भिक्षा माँगने निकले। घूमते फिरते वे वहां के किले पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने 'जय जय श्री 'रघुवीर समर्थ' की आवाज़ लगाई। उस समय महाराज शिवाजी उसी किले

में थे। उन्होंने विचार किया कि सुयोग्य और सत्पात्र गुरु देव की झोली में डालने के लिये वैसी ही उचित भिक्षा होनी चाहिये। अतः अपने लेखक से एक दान पत्र लिखवाया और उसे गुरु की झोली में डाल दिया। श्री समर्थ जी के पूछने पर कि यह क्या? शिवाजी ने कहा कि भिक्षा है। जब समर्थ जी ने दान पत्र उठा कर पढ़ा तो उसमें यह लिखा हुआ था—"मैंने आज तक जितना राज्य स्थापित किया है वह गुरुदेव जी के चरणों पर अर्पित है"।

शिवाजी की यह भक्ति देखकर गुरुदेव ने प्रसन्नता प्रगट करते हुए उनसे पूछा कि मुझे अपना सारा राज देकर अब तुम क्या करोगे? उन्होंने उत्तर दिया कि मैं आप का सेवक हूं और आपकी सेवा करूँगा।

कहते हैं कि इस प्रकार कह शिवाजी ने गुरुदेव की झोली अपने कन्धे पर रख ली और उनके साथ नगर में घूम घूम कर भिक्षा माँगी और श्री समर्थ जी के भोजन करने के बाद उनका प्रसाद उन्होंने खाया। इसके बाद समर्थ जी ने शिवाजी से कहा कि मैं राज्य लेकर क्या करूँगा। राज्य

करना क्षत्रियों का धर्म है। तुम अच्छी तरह से राज्य का इन्तजाम करो। यही मेरी सेवा है।

इसके पश्चात् श्री समर्थ जी ने कहा कि इसी प्रकार एक समय श्री रामचन्द्र जी ने अपना राज्य कुलगुरु वसिष्ठ जी को समर्पित किया था। फिर वसिष्ठ जी ने राज्य को लौटाते हुए उन्हें प्रजा पालन की आज्ञा दी। अन्त में रामदास जी ने शिवाजी से कहा कि मेरी ओर से प्रधान मंत्री की हैसियत से इस राज्य का इन्तज़ाम तुम करो।

शिवाजी ने यह दिखलाने के लिये कि अब से महाराष्ट्र का राज्य श्री समर्थ का है, अपने राष्ट्रीय झण्डे का रङ्ग गेरुवा कर दिया क्योंकि इसी रङ्ग के कपड़े श्री समर्थ जी पहनते थे।

सन् १६८० ई० में शिवाजी का परलोक वास हो गया। यद्यपि श्री समर्थ जी विरक्त मनुष्य थे, तथापि श्री शिवाजी के स्वर्गवासी होने से उन्हें बहुत ही दुःख हुआ क्योंकि वे उनका दाहिना हाथ थे।

अपने इस बड़े सहायक के परलोक गामी होने पर उन्होंने बाहर निकलना बिलकुल छोड़ दिया और हमेशा एक कोठरी में ही बन्द रह कर भजन

करने लगे। यहाँ तक कि संम्भाजी के राज्याभिषेक के अवसर पर भी वे स्वयं न गये किन्तु अपने एक शिष्य को अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा।

संभाजी अपने पिता जैसे न निकले। वे हठी तथा क्रोधी स्वभाव के थे। इस कारण उनके हाथ से बहुत से अनुचित कार्य हुए। इस खबर को पाकर श्री रामदास जी को अपार दुःख हुआ और उन्होंने एक उपदेश पूर्ण पत्र लिखकर शम्भा जी के पास भेजा पर उनपर इसका प्रभाव कुछ भी न पड़ा। उन्होंने उस पत्र में अन्य बातों के साथ यह भी लिखा था कि शिवाजी के चलाये हुये काम को आगे बढ़ाओ अर्थात् स्वराज्य और स्वधर्म की रक्षा सब प्रकार से करो।

श्री समर्थ जी का निर्वाण

कहा जाता है कि शिवाजी की मृत्यु के अनन्तर श्री समर्थ जी को ऐसा मालूम पड़ने लगा कि अब हमारा अन्तकाल भी निकट है। सन् १६८१ ई० में राम नवमी के अवसर पर वे चाफल गये और वहां के उत्सव का कार्य समाप्त करके सज्जनगढ़ वापस आये। इसके पश्चात् अन्न खाना छोड़

कर कई महीने तक केवल दूध पर ही निर्वाह किया। इसका परिणाम यह हुआ कि दिन २ उनका शरीर कृश होने लगा।

एक दिन उन्होंने विचार किया कि देखें मेरे शिष्यों में कोई ऐसा भी है जो मेरे निर्वाण का दिन जानता हो। इसलिये उन्होंने एक श्लोक का आधा चरण कहा जिसका आशय यह था कि श्री समर्थ जी का मरण काल अब पास आ गया है। अतः खूब भजन करना चाहिए। इस पर उनके शिष्य उद्धव गोस्वामी ने श्लोक को पूरा किया जिसका मतलब यह था कि नवमी तिथि का ख्याल रखकर कार्य जल्दी करना चाहिए। शिष्य की इस श्लोक पूर्ति को सुन कर श्री समर्थ जी बहुत खुश हुए। इसके बाद सब शिष्य मिलकर खूब भजन करने लगे।

माघ वदी प्रतिपदा के दिन से ही श्री समर्थ जी दूध पीना छोड़ कर निराहार रहने लगे। अष्टमी को दिन रात भजन होता रहा। श्री समर्थ जी ने रामचन्द्र जी से अपने सम्प्रदाय के लोगों की रक्षा करने की प्रार्थना की और इसके उपरान्त अपनी मण्डली की सब व्यवस्था ठीक करके श्रीरामचन्द्र

जी के चरणों में मन लगाया। इस प्रकार श्री राम-चन्द्र जी का भजन करते तथा सुनते माघ वदी नवमी के दिन इह लीला समाप्त कर परलोक सिधारे।

कहा जाता है कि मृत्यु के कुछ पूर्व समर्थ जी के शिष्य उनकी हालत देखकर रोने लगे। इस पर रामदास जी ने कहा कि इतने दिन मेरे साथ रह कर क्या तुम लोगों ने रोना ही सीखा है। उन्होंने जवाब दिया कि अब यह सगुण मूर्ति हम लोगों के सामने से चली जा रही है। अब हम किसके साथ भजन और बातचीत करेंगे। समर्थ जी ने उत्तर दिया कि मेरे बाद जो मुझसे बातचीत करना चाहें, वे मेरे 'दास बोध' को पढ़ें।

शिष्य परीक्षा

कहते हैं कि एक समय श्री रामदास जी के कुछ शिष्य आपस में यह बात चीत कर रहे थे कि यद्यपि हम लोग गुरु महाराज की इतनी सेवा करते हैं तथापि देखने में यह आता है कि हम लोगों की अपेक्षा शिवाजी पर उनका प्रेम और कृपा अधिक है। किसी प्रकार यह बात समर्थ जी

के कानों में पड़ गई; अतः इन शिष्यों का वैमनस्य तथा अहङ्कार दूर करने के विचार से उन्होंने अपने शिष्यों की परीक्षा लेनी चाही।

एक दिन पेट दुखने का बहाना कर वे पहाड़ की एक गुफा में जाकर लेट गये।

जब शिवाजी को यह पता चला कि गुरु देव के पेट में बहुत दर्द है और इस कारण वे बहुत घबरा रहे हैं, तो वे गुरुदेव के पास पहुँचे। उनको दुखी देख कर शिवाजी बहुत चिन्तित हुए।

इसके बाद शिवाजी ने गुरु जी से कहा—आप की तकलीफ देख कर मुझे बहुत कष्ट हो रहा है। कहिये आपके पेट में दर्द होने का क्या कारण है?

गुरुदेव—न जाने क्या हो गया है? कल रात से एकाएक बड़े जोर से पेट दर्द कर रहा है। कुछ अच्छा ही नहीं लग रहा है। तभी से पड़े २ यहाँ लोट रहा हूं। मालूम पड़ता है कि अब मरण काल निकट आ गया है।

यह बात सुन कर शिवाजी की आँखें आंसुओं से भर गईं। अनन्तर आँसुओं को पोछते हुए

शिवाजी ने कहा—आप ऐसी अशुभ बात मुख से क्यों निकाल रहे हैं। क्या कोई ऐसी दवा नहीं है जिससे आपको जल्द आराम मालूम पड़े ?

गुरु—दवा ज़रूर है; लेकिन उसका लाना बहुत कठिन है।

गुरु जी की यह बात सुन कर वहां पर उपस्थित सभी शिष्यों ने एक स्वर से कहा—आप दवा का नाम तो बतलाइये। अगर उसके लिये प्राणों की बाजी भी लगानी पड़े तो हम लोग तैयार हैं।

गुरु—अगर तुम लोगों में से कोई बाघिन का दूध ला सके तो पेट की पीड़ा दूर हो सकेगी। नहीं तो नहीं।

यह सुन कर सब लोग एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। भला इतनी किस में हिम्मत थी कि जो स्वयं जान बूझ कर काल के मुँह में अपने को डाले, अतः सब चुप हो गये।

तब शिवाजी ने कहा—अगर आज्ञा हो, तो मैं जाकर दूध ले आऊँ।

शिवाजी की बात सुन कर समर्थ ने कहा—

शिवा, तुम मुझे प्राणों से भी प्यारे हो
सुख के लिये मैं तेरी बलि चढ़ाना नहीं चाहता।

शिवाजी—गुरुदेव! आप किसी बात की चिन्ता न करें। मैं अभी जाकर दूध लाता हूं।

गुरु—देख तो शिवा! कैसी अँधेरी रात है। भला ऐसे समय में मैं कैसे तुझे जाने की अनुमति दूँ।

शिवाजी—गुरु जी आप मुझे आशीर्वाद दें। मैं सकुशल दूध लेकर लौट आऊँगा।

गुरु—शिवा! अगर तेरी ऐसी इच्छा है, तो जा; मगर शीघ्र लौटना।

शिवाजी—मैं अभी आया।

वर्षा ऋतु की घनी अँधेरी रात थी। वन में चारों ओर सन्नाटा था। हाँ, कभी २ हाथियों की चिग्घाड़ और सिंहों का गर्जन अवश्य सुनाई पड़ता था। आकाश में इधर उर दो चार तारे दिखलाई पड़ते थे। शिवा जी के धैर्य की परीक्षा लेने के वास्ते चन्द्रमा भी बादलों में छिपा हुआ था। ऐसे भयानक समय में शिवा जी को छोड़ कौन ऐसा माई का लाल था जो अपने प्राणों की चिन्ता न

कर के गुरु के वास्ते दूध लाने को तैयार होता।
धन्य शिवा जी ! धन्य तेरी गुरु भक्ति !

शिवा जी को उस अन्धकार पूर्ण भाग में घूमते २ एक घंटा हो गया। परन्तु कहीं बाघिनी न दिखाई पड़ी अब शिवाजी सोचने लगे कि क्या करें। इधर गुरु देव की चिन्ता भी व्याकुल किए हुए थी।

धीरे २ आसमान में बादल छा गये। छोटी २ बूंदे भी पड़ने लगी। शिवा जी ने अब भी हिम्मत न हारी। धीरे २ मूसला धार पानी बरसने लगा। पानी बरसने की वजह से शिवा जी एक सघन पेड़ के नीचे बैठ गये।

संयोग वश एक बाघिन उसी समय अपने बच्चे के साथ पानी से बचने के लिये उसी पेड़ के नीचे आ गई। बाघिन को देख कर शिवा जी को दूध मिलने की कुछ आशा हुई। लेकिन प्रश्न यह था कि बाघिन किस प्रकार दूध दुहने देती ?

बाघिन शिवा जी के पास ही आकर खड़ी हो गई। अब शिवा जी ने उस पर हाथ फेरना आरंभ कर दिया वह चुप मारे खड़ी थी। शिवा जी ने कहा—मेरे गुरुदेव के पेट में बहुत दर्द है; उन्हें

बाघिन के दूध की आवश्यकता है। क्या मैं थोड़ा सा दूध ले सकता हूं।

कहते हैं कि इसपर बाघिन ने सर हिलाया जिसे शिवाजी ने उसकी अनुमति समझ लाये हुए बर्तन में दूध दुहा। दुहते समय बाघिन ने जरा भी रुकावट न डाली, प्रत्युत कपिला गाय की तरह चुपचाप खड़ी रही।

शिवाजी के दूध दुह लेने के बाद बाघिन एक तरफ खड़ी हो गई। शिवाजी दूध ले कर गुरुजी की ओर चल पड़े।

शिवाजी ने गुरुजी को दूध देते हुए कहा कि आपकी कृपा से दूध लाने में किसी प्रकार की तकलीफ न हुई।

शिवाजी की यह अनन्य भक्ति देख कर श्री समर्थ जी चकित हुए। उन्हें इस बात को सोच कर परम आनन्द हुआ कि शिवा परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ।

उन्होंने अन्य उपस्थित शिष्यों को सम्बोधित करते हुए कहा—देखो शिवा ने कैसा सराहनीय कार्य किया है। ऐसे ही लोग सच्ची प्रीति तथा कृपा के अधिकारी होते हैं।

गुरुदेव के इस व्यंग वचन को सुन कर वे शिष्य पानी-पानी हो गये जिन्होंने श्री समर्थ जी पर आक्षेप किया था और अपनी गलती के लिये उनसे क्षमा मांगी।

शिवाजी का अभिमान हरण

कहा जाता है कि जब सज्जन गढ़ बनवाया जा रहा था, तो एक दिन शिवाजी के मन में यह बात सोचकर अभिमान हुआ कि मेरे द्वारा नित्य प्रति हज़ारों आदमियों को खाना मिलता है। उस अवसर पर श्री समर्थ जी वहां पर थे। उन्होंने भक्त के हृदय की बात को समझ कर पत्थर के टुकड़े की ओर इशारा करके एक बेलदार से उसे तोड़ने के लिये कहा। तोड़ने पर उसमें एक जीवित मेढ़क और कुछ पानी निकला। उस मेढ़क की ओर संकेत करके श्री समर्थ जी ने शिवाजी से कहा—तुम सर्व शक्तिमान हो। तुम्हारी बदौलत सब जीवों को खाना मिलता है।

श्री समर्थ जी की इस व्यंग्य उक्ति को सुन कर शिवाजी ने अत्यन्त लज्जित हो अपने झूठे अभिमान के लिये गुरु देव से क्षमा याचना की।

अद्भुत कृत्य

हर एक साधु या महात्मा के विषय में उनके अनुयायियों में कुछ उनके अद्भुत कार्यों की प्रसिद्धि होती है। इनमें कुछ तो सच्चे होते हैं और कुछ बनावटी।

श्री समर्थ जी भी एक बहुत बड़े महात्मा थे, अतः उनके विषय में भी यदि ऐसी बातें प्रसिद्ध हों तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। जनता के मनोरंजन के लिये उनके बारे में प्रसिद्ध अनेक अद्भुत कार्यों में से एक दो नीचे लिखे जाते हैं।

कहते हैं कि टाकली के पास कोसावर नाम का एक गाँव था। वहाँ का एक धनी अग्निहोत्री क्षय रोग से मर गया। लोग उसकी लाश को श्मशान की ओर ले जा रहे थे। पीछे २ उसकी स्त्री भी शृङ्गार करके सती होने के लिये जा रही थी। उसके प्रणाम करने पर श्री समर्थ जी ने आशीर्वाद दिया कि सौभाग्यवती रहो और तुम्हारे आठ पुत्र हों। लेकिन जब यह पता चला कि यह अभी विधवा हुई है, तब भगवान का ध्यान करके उन्होंने उस शव पर गोदावरी का जल

छिड़का जिससे मुर्दा जी उठा। रामदास जी ने फिर आशीर्वाद दिया कि तुम्हें दो पुत्र और होंगे। तदनुसार उसे दस पुत्र हुए। उसने अपना प्रथम पुत्र रामदास जी को अर्पित कर दिया। यही आगे चल कर उनका प्रधान शिष्य उद्धव गोस्वामी हुआ।

सन १६७८ ई० में एक बार श्री समर्थ जी के आश्रम में एक साथ बहुत से अतिथि आ पहुँचे। उस समय उनके आश्रम में काफी खाने की सामग्री न थी। शिष्यों ने यह बात गुरु जी को सूचित कर दी। गुरु जी ने कहा कि कोई हर्ज की बात नहीं है।

कहते हैं कि श्री रामदास जी ने उसी समय मराठी के कुछ श्लोकों की रचना की और उन्हें शिष्यों को देते हुए कहा कि पढ़ते हुए जाकर भिक्षा माँग लाओ। उस दिन थोड़े ही समय में इतनी अधिक भिक्षा मिली जो हजारों आदमियों के लिये पर्याप्त थी। उस समय महाराज शिवा जी के मन में यह बात अच्छी तरह से बैठ गई कि श्री समर्थ जी की वाणी में राजा की अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति है। महाराष्ट्र देश में वे श्लोक बहुत

प्रसिद्ध हैं और सैकड़ों भिक्षुक अभी भी उन श्लोकों को पढ़ते हुए भिक्षा माँगते हैं और अधिक मात्रा में पाते हैं।

रचनाएँ

श्री समर्थ रामदास जी बहुत बड़े महात्मा और साधु होने के साथ ही साथ बहुत बड़े विद्वान्, कवि, राजनीतिज्ञ और अनुभवी भी थे। श्री समर्थ जी के नाना विषयों के ज्ञान का परिचय उनके बनाये हुए 'दास बोध' से मिल जायगा।

कहते हैं कि इस ग्रंथ की रचना महाराज शिवाजी के लिये हुई थी पर यदि सचमुच में देखा जाय तो यह ग्रंथ सारे संसार के काम का और मंगलकारी है। इसमें जितने अधिक विषयों का वर्णन आया है, उस पर यदि दृष्टि रखी जाय तो इसे विश्व-कोष कहने में कोई अत्युक्ति न होगी। यद्यपि दास बोध का विषय अध्यात्म है तो भी इसमें इहलोक और परलोक साधन के अच्छे २ उपाय बतलाये गये हैं। मनुष्य को इस संसार में कैसे रहना चाहिये, अपने आचार-विचार तथा व्यवहार कैसे रखना चाहिये, इन सब बातों पर इस ग्रंथ

में काफी प्रकाश डाला गया है। इसका विषय क्षेत्र बहुत विस्तृत है। सब प्रकार की स्तुतियों, भक्तियों और गुणों आदि के साथ यह भी बतलाया गया है कि मनुष्यों को किस प्रकार लिखना-पढ़ना चाहिए। इसमें इसका भी उल्लेख है कि निद्राकाल में साधारणतः मनुष्यों की क्या २ अवस्थाएँ होती हैं।

श्री समर्थ जी का विषय ज्ञान अगाध सा मालूम पड़ता है। ये जिस विषय का वर्णन करना शुरू करते हैं, उसे अन्तिम सीमा तक पहुँचा कर छोड़ते हैं। जब कभी किसी वस्तु या वर्ग के नामों या विभागों का प्रसंग आता है तो पाठक उसमें मग्न सा हो जाता है और उसकी यह पक्की धारणा हो जाती है कि श्री समर्थ जी कोई मामूली आदमी न थे; पर एक असाधारण और अलौकिक पुरुष थे। वे बहुज्ञ, बहुश्रुत और बहुदर्शी ही नहीं मालूम पड़ते पर सर्वज्ञ भी जान पड़ते हैं। यद्यपि उन्होंने बारह वर्ष की अवस्था में घर गृहस्थी को त्याग किया था तो भी सारे भारतवर्ष में घूम २ कर और हर एक प्रकार के आदमी से मिल-जुल कर तथा सभी बातों का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण कर के प्रायः सांसारिक सभी बातों का ज्ञान प्राप्त कर

लिया। उनके अन्य ग्रंथों में मकान बनाने, बाग लगाने की विधियों तक का वर्णन मिलता है। भारतवर्ष तथा भारतवासियों से संबन्ध रखने वाले प्रायः हर एक विषय पर उनकी लेखनी चली है। ऐसी अवस्था में यदि यह कहा जाय 'दास बोध' को पढ़ने से बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होग तो यह 'दास बोध' की झूठी बड़ाई न होगी।

श्री समर्थ जी ने केवल 'दास बोध' की ही रचना नहीं की है किन्तु इसके अलावा कई छोटे मोटे ग्रंथ भी रचे हैं।

ग्रंथ रचना के विषय में इनकी तुलना केवल भक्त-शिरोमणि सूरदास जी से की जा सकती है। जिस तरह सूरदास जी ने अपना सारा जीवन भक्ति-विषयक कविताओं की रचना में बिताया उसी तरह रामदास जी भी आजीवन भक्ति-विषयक कविताएँ रचते रहे। उनकी रचनाएँ जितने अधिक विषयों पर हैं उनकी संख्या भी उतनी ही अधिक है। उनके शिष्य अनन्त कवि का कहना है कि श्री समर्थ जी ने ग्रंथों का एक समुद्र ही प्रस्तुत कर दिया है। श्री समर्थ जी ने कितने ग्रन्थों की रचना की है, यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता क्योंकि खोज करने पर नये २ ग्रथ मिलते

ही जा रहे हैं। बहुत संभव है कि श्री समर्थ जी के कहे जाने वाले ग्रंथों में अनेक ऐसे भी हों जो दूसरे के लिखे हुए हों, किन्तु उन्हें प्रसिद्ध करने के वास्ते श्री समर्थ जी का कहा गया हो। चाहे जो कुछ हो पर यह बात निर्विवाद है, कि श्री समर्थ जी के सारे ग्रंथों का अभी ठीक २ पता नहीं चला है। यद्यपि उनकी रचना के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं तथापि वे पूर्ण नहीं कहे जा सकते। श्री समर्थ जी का रचा हुआ एक रामायण भी है जो आकार में 'रामचरितमानस' से दूना है। उनके प्रकाशित ग्रंथों की सूची इस प्रकार है:—

मन के श्लोक, चौदह शतक, जन स्वभाव, गोसावी, पंच समाधि, जुनाट पुरुष, मानस पूजा, जुना दासबोध, पंचीकरण योग, चतुर्थ योगमान, मानपंचक, पंचमान, रामगीता, कृत निर्वाह, चतुः समासी, अक्षरपद संग्रह, सप्त समासी और राम कृष्णस्तव आदि। इनके अतिरिक्त कई और ग्रंथ भजन और आरति के हैं।

दास बोध के विषय में एक बात और कहनी है, वह यह कि इस ग्रंथ का श्री गणेश तथा इति-श्री कब हुई यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा

सकता। दास बोध के छठे दशक में एक स्थान पर यह आया है कि अब तक कलि के ४७६० वर्ष बीत चुके हैं। इस हिसाब से इसकी रचना का काल संवत् १७१६ या सन् १६६० ई० ठहरता है। कुछ लोगों का कहना है कि श्री समर्थ जी ने इसकी रचना का काम अपनी मृत्यु के कुछ ही वर्ष पहले समाप्त किया था।

दासबोध की रचना-प्रणाली के विषय में लोगों का मत एक नहीं है। कुछ लोगों की यह राय है कि जब श्री समर्थ जी जंगल में एकान्त में बैठते थे, तब इसे लिखा करते थे। दूसरे लोगों का यह मत है, कि श्री समर्थ जी ने समय २ पर अपने शिष्यों, अनुयायियों अथवा जनता को जो उपदेश दिये थे, उन्हीं का संग्रह दासबोध में है।

इनके बारे में एक ध्यान देने योग्य यह बात है कि इसमें आरम्भ के आठ दशकों तक क्रम निश्चित है। लेकिन इसके बाद आगे के दशकों में कोई निश्चित क्रम नहीं है और अनेक विषय बिना किसी क्रम के आगे पीछे आये हैं। यह ग्रंथ बीस दशकों में विभक्त है और प्रत्येक दशक में दश अध्याय हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इस ग्रंथ में अध्यात्म सम्बन्धी बातों का ही वर्णन प्रधान रूप से आया है। इसमें इसी बात का निरूपण किया गया है कि मनुष्य समस्त सांसारिक विषयों का परित्याग कर अपनी दृष्टि तथा विचार को इतना विस्तृत करे कि सारा संसार ब्रह्ममय दिखलाई पड़े अर्थात् अपनी आत्मा, पराई आत्मा तथा उस विश्वात्मा में किसी प्रकार का भेद न रह जाय। आध्यात्मिक विचारों की अन्तिम सीमा तथा अन्तिम लक्ष्य यही है। इस प्रकार का भाव अपने लिये तथा संसार के लिये परम हितकर होता है। अध्यात्म सम्बन्धी अन्य ग्रंथों की तरह दासबोध में भी इसी बात पर जोर दिया गया है। जब मनुष्य के मन में यह भाव उत्पन्न होता है कि जैसी मेरी आत्मा है वैसी ही दूसरे की भी है और वही एक परमात्मा सब जीवों में व्याप्त है, तब वह दूसरे के साथ किसी प्रकार का द्वेष भाव नहीं रखता, उसको हानि पहुँचाने की चेष्टा भी नहीं करता।

मालूम पड़ता है कि इसी बात को ध्यान में रख कर श्री समर्थ जी ने भी दास बोध में जहाँ

तहाँ इस बात का दृढ़ता के साथ उपदेश दिया है कि हर एक जीव को सुखी, प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखा जाय। इसके अलावा आपने यह भी कहा है कि सब जीवों को सुखी रखने से ही परमात्मा प्रसन्न होता है। क्योंकि जन या जनता में ही परमात्मा है और इसलिये हर एक को पहले उसी जनता रूपी परमात्मा की पूजा और सेवा करनी चाहिये। कैसा सुन्दर आदर्श है। यदि इसी आदर्श को मान कर संसार में मनुष्य काम करें, तो फिर कहीं दुःख, संकट, लड़ाई, झगड़ा, अनर्थ या पाप आदि का सामना करने की आवश्यकता ही न पड़े। इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग का दर्शन सुलभ हो जाय, परिश्रम के बिना ही इस संसार में राम-राज्य की स्थापना हो जाय। वे महापुरुष धन्य हैं, जो इस आदर्श को अपना लक्ष्य बना कर जीवन-निर्वाह करते हैं। उन साधु पुरुषों की महानता का तो ठिकाना ही नहीं है जो इस प्रकार का आदर्श लोगों के सामने रखते हैं। परन्तु यह अध्यात्मिक आदर्श बहुत ऊँचा है और हर एक मनुष्य इस आदर्श तक न पहुँच सकता है, न उसके मुताबिक चल ही सकता है। और जो थोड़े से व्यक्ति इस

आदर्श तक पहुँच सकते हैं या उसके अनुसार काम कर सकते हैं, उनके लिये सब से आवश्यक बात भक्ति है। भारतीय विद्वानों ने बहुत सोच विचार के पश्चात् यह तै किया था कि मनुष्य को सत्य के मार्ग पर अटल रखने के लिये तथा धार्मिक तथा सच्चरित्र बनाने के लिये सबसे अधिक सहायता भक्ति से मिलती है। भक्ति की ही सहायता से मनुष्य अधिक से अधिक गुण प्राप्त कर सकता है और संसार में अनेक अनर्थों से अपनी रक्षा कर सकता है। श्री समर्थ जी को पैनी दृष्टि से भला यह बात कैसे छूट सकती थी। इसलिये उन्होंने अपने दासबोध में यह बतलाया है कि धर्म-मार्ग में भक्ति बहुत ऊँचा स्थान रखती है। उन्होंने सर्व-साधारण के लिये भक्ति की आवश्यकता तो बतलाई ही है, किन्तु इसी के साथ २ उन्होंने उन विरक्तों के लिये भी इसे आवश्यक माना है जो उच्च आदर्श तक पहुँच चुके हैं। उनका कहना है कि जिन्हें भगवान की प्राप्ति हो गई है, उन्हें भी भक्ति कभी न छोड़नी चाहिये। किन्तु सदा भक्ति मार्ग पर आरूढ़ रहना चाहिये। सब मनुष्यों को सन्मार्ग में लगाये रखने वाले इस दूसरे

साधन का भी श्री रामदास जी ने जो निरूपण किया है, वह उनकी लोक-मङ्गलकारिणी बुद्धि का एक अच्छा उदाहरण है।

संसार के सभी लोग त्यागी या विरक्त नहीं हो सकते। अधिकांश लोगों को संसार में घर गृहस्थी करते हुए ही जीवन व्यतीत करना पड़ता है, ऐसे लोगों के लिये श्रीसमर्थ जी का यह उपदेश है कि वे लोग गृहस्थी में रहकर अधिक से अधिक परमार्थ का साधन करें। उन्होंने गृहस्थाश्रम को महत्वपूर्ण बतलाया है और कहा है कि यही इहलोक तथा परलोक साधन का मुख्य सहारा है। इससे यह प्रकट होता है कि श्री समर्थ जी की कभी यह इच्छा नहीं थी कि संसार के सभी मनुष्य घर गृहस्थी का परित्याग कर सिर मुँड़ा लें; क्योंकि सब लोग साधुओं का सा आचारण नहीं कर सकते और सब लोगों के त्यागी बनने से संसार का काम भी न चल सकेगा। श्री समर्थ ने सब लोगों को बहुत सचेत कर दिया है कि वे लोग ऐसे साधु महात्माओं के फेर में न पड़ें जो स्वार्थी हों और कुछ चमत्कार दिखाकर लोगों से पैसा पैदा करने की चेष्टा करते हों।

ऐसे पाखण्डी साधुओं के लक्षण उन्होंने अपने दासबोध में बतलाये हैं ताकि उन्हें पढ़कर लोग पाखण्डियों से बचने की कोशिश करें।

श्री समर्थ जी ने वर्णाश्रम धर्म के प्रति अपनी श्रद्धा प्रगट की है। उन्होंने भी संत तुलसीदास के भाँति ब्राह्मणों को उँचा स्थान दिया है, किन्तु इसके साथ ही साथ यह भी कहा है कि भगवान् के दृष्टि में सभी वर्ण समान हैं और भगवान् उसीपर खुश रहते हैं जो उनको भजता है क्योंकि भगवान् भक्ति के भूखे हैं। जो मनुष्य अपने को ऊँचा समझता है, वह ऊँचा नहीं है, किन्तु उच्चता तो इसमें है कि अपने को सबसे छोटा समझा जाय। "लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभु दूरी। चींटी शक्कर लै चली, हाथी के सिर धूरी"

संसारी मनुष्यों के लिये लोकमत का आदर करना जरूरी होता है। जो लोकमत की परवाह नहीं करता तथा उसे घृणा की दृष्टि से देखता है, वह स्वेच्छाचारी होकर समाज पर अनेक प्रकार के अत्याचार करने लगता है, अगर ये बातें न हों तो भी उसके द्वारा समाज की कुछ न कुछ हानि होती ही है। अतः समर्थ जी का यह आदेश है

कि लोकमत के विरुद्ध कोई काम न किया जाय। उनका तो यहाँ तक कहना है कि लोकमत के विरुद्ध आचरण करना पाखण्ड है और पाखण्ड हर हालत में छोड़ देना चाहिये।

कहने का तात्पर्य यह कि श्री समर्थ जी ने इस बात पर जोर दिया है कि लोगों के आचार और विचार दोनों शुद्ध होने चाहिये। लोगों को जन्म से लेकर मरण तक अपने आचार विचार कैसे रखना चाहिये, इस बात का स्पष्ट वर्णन दास बोध में किया है। ज्ञान की महिमा बहुत गाई गई है क्योंकि आचार और विचार की शुद्धता उसी पर अवलम्बित है और ज्ञान की प्राप्ति का उपाय सत-गुरु की प्राप्ति और सेवा है। बात भी ठीक है। लोग अनेक प्रकार का ज्ञान प्राप्त करते हैं पर समर्थजी इन सब ज्ञानों को ज्ञान नहीं समझते क्योंकि वास्तव में ज्ञान वही है जिससे इहलोक और परलोक दोनों सुधरें। प्रायः कहा जाता है कि आधुनिक पाश्चात्य जातियों ने ज्ञान-भाण्डार की वृद्धि की है किन्तु इस भांडार का उपयोग कैसे कामों में किया जा रहा है? एक दूसरे को मारने काटने, लूटने और दबाने में? तो फिर ऐसे भांडार

से मनुष्य जाति की भलाई हुई या बुराई ? यदि बुराई हुई तो ऐसे ज्ञान की जरूरत क्या है। ऐसे ज्ञान के होने से तो न होना ही अच्छा।

साधारण तौर पर साधु, महात्मा और समाज-सुधारक राजनीति से अपरिचित रहते हैं और प्रायः राजनीति से सम्बन्ध नहीं रखते, पर श्री समर्थ जी में यह बात नहीं थी। वे राजनीति के अच्छे जानकार थे और समय २ पर राजनीति के गूढ तत्वों का उपदेश देते थे। दासबोध में भी कई स्थानों पर राजनीति सम्बन्धी अनेक ऐसी बातें बतलाई गई हैं जो सब जातियों के लिये समान रूप से लाभदायक रही हैं और रहेंगी भी। श्री समर्थ ने देश की शोचनीय दशा देख कर ही राजनीति का विषय अपने हाथ में लिया। उन्होंने धर्म-प्रचार तथा लोक-कल्याण का काम हाथ में लेने के पहले सारे भारतवर्ष में भ्रमण किया और उसका कोना २ छान डाला था। अतः सारे देश और समाज की दीन दशा उनकी आँखों के सामने थी। ऐसी हालत में अगर उन्होंने राज-नीति की परवाह न की होती तो वे अपने काम में

कभी सफल न हो सकते। संयोग से महाराज शिवाजी के समान योग्य शिष्य और चतुर कार्य-कर्ता की प्राप्ति से उन्हें राजनीति के गूढ़ तत्वों पर विचार करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

कहने का मतलब यह है कि चाहे जिस दृष्टि से देखिये श्री समर्थ जी छोटे बड़े सभी विषयों की पूर्ण रूप से जानकारी रखते थे। वे सभी विद्याओं और कलाओं के ज्ञाता थे। संसार में इसी प्रकार के पूर्ण पुरुष अवतार माने जाते हैं। ऐसे ही महा-पुरुषों के उपदेश छोटे, बड़े, शिक्षित, अशिक्षित सभी लोगों के लिये उपयोगी होते हैं।

श्री समर्थ ने धर्म और राजनीति को बड़ी खूबी से एक साथ मिलाकर भगवद्भक्तों को वीर और वीरों को भगवद्भक्त बनाया और इस प्रकार देश का धार्मिक और राजनैतिक उत्थान किया।

उपसंहार

समर्थ रामदास स्वामी की गणना उन महा-पुरुषों में की जाती है जिन्होंने अपना सारा जीवन परोपकार में ही व्यतीत कर संसार का महान कल्याण किया है। उनका जीवन चरित्र अत्यंत

उज्वल, स्फूर्तिदायक, शिक्षाप्रद तथा सेवा और त्याग का जीता-जागता उदाहरण है। समर्थ जी अपना अवतार कार्य समाप्त कर इस लोक से चल बसे परन्तु उनकी कीर्ति सदा अमर है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है "सूरत तो जाती रही, कीरत कथहुँ न जाय"।

ऐसे महान पुरुषों का जीवन चरित्र ही संसार के इतिहास का मुख्य आधार है। आज से तीन सौ वर्ष पूर्व भारत की दशा बहुत शोचनीय थी। मुसलमान शासकों की धार्मिक कट्टरता के कारण हिन्दू समाज पीड़ित था। हिन्दू धर्म खतरे में था। सारा देश संग्रामभूमि बना हुआ था। ऐसे ही काल में समर्थ जी का जन्म हुआ था। उन्होंने अपनी अलौकिक प्रतिभा, तपस्या और त्याग से हिन्दुओं का संगठन कर हिन्दूधर्म की रक्षा की और हिन्दू राज्य स्थापन करने में महाराज शिवाजी की सहायता की। समर्थ शिवाजी के गुरु थे। उनकी ही प्रेरणा और मंत्रणा से राज्य के बड़े बड़े कार्य किये जाते थे।

समर्थ रामदास जैसा कहते थे वैसा ही स्वयं करते भी थे। आजकल के अनेक साधुओं की

भाँति वह केवल दूसरों को उपदेश देकर स्वयं चाहे जैसा मनमाना आचरण नहीं करते थे। उनका सिद्धान्त था कि पहिले स्वयं पुरुषार्थ करो और फिर दूसरों को पुरुषार्थी बनने का आदेश दो। रामदास स्वामी अपने आपको 'दासानुदास' कहते थे परन्तु जनता ने उन्हें 'समर्थ' की पदवी प्रदान कर उनका गौरव किया था। इसी एक बात से उनकी लोकप्रियता का पता चलता है।

समर्थ जी ने गृहस्थी के झंझटों से दूर रह कर अपना सारा जीवन विद्याध्ययन, लेखन, तपस्या और सेवा में ही बिताया था। हिन्दूओं का संगठन हिन्दूधर्म का प्रचार और हिन्दू राज्य की संस्थापना यही उनके जीवन का मुख्य ध्येय था। उन्होंने संपूर्ण भारत वर्ष में भ्रमण किया था। देश की दशा का उन्हें पूर्ण ज्ञान था और इसी कारण शिवाजी जैसे वीर शिरोमणी बिना उनकी आज्ञा के कोई भी कार्य नहीं करते थे। समर्थ रामदास ने, महाराष्ट्र के प्रत्येक गांव में मठ खोले थे। यहां केवल आध्यात्मिक विषयों की ही चर्चा नहीं होती थी बल्कि देश की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक बातों पर भी विचार किया जाता था।

महाराज शिवाजी को इन मठों के द्वारा अपने राज्य का विस्तार करने में बड़ी सहायता मिली।

समर्थ जी का स्वभाव बहुत सरल था। उनकी वाणी मधुर थी। उनकी कवित्व-शक्ति असाधारण और उनके उपदेश जनता को मोहित कर उन्हें ठीक रास्ते पर लाते थे।

संतो का हृदय फूल से भी कोमल और वज्र से भी कठोर होता है। समर्थ जी के चरित्र में भी यहीं बात पाई जाती है। कर्तव्य के सामने वह किसी की भी परवाह नहीं करते थे। महाराज शिवाजी और कल्याण स्वामी उनके अत्यंत प्रिय शिष्य थे। परन्तु समर्थ ने उनको भी कई बार कर्तव्य से चूकने पर दण्ड दिया था। उनके हृदय में इन शिष्यों के प्रति अगाध प्रेम था। कई बार उन्होंने इनकी परीक्षा ली। महाराज शिवाजी की परीक्षा का एक उदाहरण हम पहिले दे चुके है। अब कल्याण स्वामी को गुरु-भक्ति और प्रेम का एक उदाहरण देखिये।

एक बार शिवाजी महाराज श्री समर्थ जी के दर्शन के लिए उनके आश्रम में गये। उन्होंने अपनी प्यारी भवानी तलवार श्री समर्थ के चरणों

पर भेंट चढ़ा दी। तलवार देखकर श्री समर्थ के मन में एक विचित्र कल्पना उठी और उन्होंने अपने शिष्यों की परीक्षा लेने के लिए एक नाटक रचा। वे तलवार हाथ में लेकर पागल की तरह ज़ोर से चिल्लाने लगे कि जो कोई मेरे सामने आवेगा उसकी गर्दन उड़ा दूँगा। नियमानुसार जब शिष्य लोग उनके दर्शन के लिए आये तो समर्थ जी की यह चेष्टा देखकर उनके हृदय में भय समा गया और वे भाग खड़े हुये। उन्होंने समझा कि श्री समर्थ पागल हो गये हैं और ऐसी दशा में उनके सामने जाना मृत्यु के घाट उतरना है। श्री समर्थ ने भागते हुए शिष्यों को पुकार कर कहा कि यदि मेरा कोई प्रिय शिष्य अपने प्राणों की बाज़ी लगाये तो मेरा पागलपन शीघ्र दूर हो जाय। कोई भी शिष्य आगे नहीं बढ़ा। उन्होंने समर्थ जी के प्रिय शिष्य कल्याण स्वामी से जाकर कहा कि स्वामी जी पागल हो गये हैं और वे एक शिष्य का बलिदान मांगते हैं। कल्याण स्वामी ने खेदपूर्वक पूछा "अरे भाई, क्या गुरुदेव के प्राण बचाने के लिये तुम लोगों मे से एक भी व्यक्ति अपने प्राण देने के लिए तैयार नहीं हुआ ? क्या तुम

सब लोग सुख के ही साथी हो ?" इतना कहकर कल्याण स्वामी तुरन्त ही श्री समर्थ जी के दर्शन के लिए रवाना हुये। अन्य शिष्यों ने यह सोचकर कि बिचारे की जान व्यर्थ जायगी उन्हें भी जाने से रोका। परन्तु कल्याण स्वामी महान गुरु-भक्त थे। उन्हें मृत्यु का डर न था। जब वे समर्थ के सामने पहुँचे तो समर्थ जी ने ललकार कर कहा कि यदि पास आवेगा तो इसी तलवार से टुकड़े टुकड़े कर डालूंगा। कल्याण स्वामी ने हाथ जोड़ कर उत्तर दिया कि यदि गुरुदेव के कर कमलों से मृत्यु मिले तो इससे बढ़ कर और सौभाग्य की क्या बात हो सकती है। इतना कह कर वे समर्थ के चरणों पर गिर पड़े। श्री समर्थ ने उन्हें गले से लगा लिया और उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु बहने लगे। अन्य शिष्य जो दूर से ही तमाशा देख रहे थे बहुत लज्जित हुए और अन्त में उन्होंने श्री समर्थ जी से क्षमा मांगी। कल्याण स्वामी पर श्री समर्थ जी की विशेष कृपा थी। श्री समर्थ जी के नाम के साथ ही साथ कल्याण स्वामी का नाम भी सदैव अमर रहेगा।

श्री समर्थ जैसी महान् आत्मायें मृत्युलोक में

समय समय पर धर्म की संस्थापना करने के लिये जन्म लेती हैं। समर्थ जी ने कहा भी है "धर्म-स्थापने चे नर। ते ईश्वरा चे अवतार। झाले आहेत पुढें होणार। देणे ईश्वरा चे॥ अर्थात् धर्म स्थापना के लिए जो महापुरुष जन्म लेते हैं उन्हें ईश्वर का अवतार ही समझना चाहिये। ऐसे पुरुष संसार में हुये हैं और भविष्य में होंगे। महा-राष्ट्र का उद्धार करने का श्रेय महाराज शिवाजी, संत तुकाराम और समर्थ रामदास जी को है!

श्री समर्थ ने 'मन' को सम्बोधित कर हजारों श्लोक लिखे हैं उनमें से कुछ श्लोकों का भावार्थ यहां देना उचित होगा।

"हे मन, ऐसा कार्य करो जिससे शरीर छूटने पर भी यश बाकी रह जाय।"

"चन्दन की लकड़ी के समान स्वयं घिस कर दूसरों को सुवास दो"

"भक्ति मार्ग को अपनाओ जिससे सहज ही में मुक्ति मिल जाय" इस संसार में कोई भी ऐसा जीव नहीं है जो सब प्रकार से सुखी हो। हर एक मनुष्य अपने कर्मानुसार ही फल भोगता है"। वही सच्चा योगी है जिसको गर्व नहीं है। जो विदेह

है। जिसके चित्त में शांति और दया है। जिसके मन में लोभ और क्षोभ नही हैं।

"हे मन संतो का साथ करो जिससे सन्मार्ग की प्राप्ति होती है"

राष्ट्रगुरु श्री समर्थ रामदास स्वामी के उपदेश स्वानुभव के तेज से परिपूर्ण होने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। आशा है पाठक वृन्द श्री समर्थ के उपदेशों का अनुसरण कर इह लोक और परलोक की यात्रा सफल बनायेंगें।

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

—: इति शुभम् :—